

बुढ़ापे से टक्कर लीजिए

— श्रीराम शर्मा आचार्य



बुढ़ापे से टक्कर लीजिए

लेखक :

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०१४

मूल्य : ७.०० रुपये

प्रकाशक

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

लेखक

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

मुद्रक :

युग निर्माण योजना प्रेस,
गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

वृद्धावस्था! साहचर्य और एकांत

समन्वय की वय

कुछ वस्तुएँ इस जगत में ऐसी हैं जो अत्यधिक सुखद, आकर्षक और प्रिय होती हैं। कुछ ऐसी हैं जिन्हें मनुष्य पसंद नहीं करता। किंतु उपयोग की दृष्टि से प्रिय-अप्रिय दोनों ही परिस्थितियाँ आवश्यक हैं। दिन भर काम के उपरांत मनुष्य थककर चकनाचूर हो जाता है तो उसे निद्रादेवी की गोद में विश्रांति मिलती है। सोने में सुख मिलता है, पर किया क्या जाए उसे भी त्यागना पड़ता है और पुनः कर्म में जुटना पड़ता है। स्वादयुक्त भोजन, सुखद स्पर्श, प्रिय मिलन आदि की ओर मनुष्य की स्वाभाविक रुचि होती है, किंतु उसे यह सभी सर्वदा उपलब्ध नहीं। मिल भी जाएँ तो जीवन अधिक दिन तक ठहर नहीं सकता। सुखवादी व्यक्तियों का दृष्टिकोण प्रायः ऐसा स्थूल होता है, किंतु इससे वे जीवन के एक पक्ष बाह्य भाग को ही देख पाते हैं। आंतरिक दृष्टि, सच्ची दृष्टि के लिए मनुष्य को संयोग और वियोग, सुख और दुःख, सुविधाएँ और कठिनाइयों की संगति परमावश्यक है। यह स्थिति बनाए रखना निष्काम कर्मयोग की आवश्यक शर्त है।

अन्य परिस्थितियों की तरह मनुष्य के सामाजिक जीवन में भी यह उभयनिष्ठ स्थिति आवश्यक है। जीवन-विकास और जीवन-लक्ष्य के कार्यक्रम साथ-साथ चलें तभी मनुष्य जीवन की सार्थकता है। सदैव सामाजिक जीवन, प्रिय परिजनों में ही लिप्त, आसक्त बने रहने में स्थूल दृष्टि से सुख अधिक है, किंतु साहचर्य आत्मा के लिए कभी सर्वाधिक प्रेरणादायक होता है और कभी-कभी आत्मकल्याण की सर्वाधिक प्रेरणा एकांत में रहने से मिलती है। अतएव मनुष्य का जीवन इस तरह का होना चाहिए कि वह अपने कर्तव्यों का पालन साहचर्य में रहकर करता रहे, किंतु आत्मचिंतन के लिए कुछ एकांत बनाए रखे ताकि वह जीवन साफल्य के आवश्यक प्रश्नों पर गहराई से छान-बीन कर सके।

ऋषियों का जीवन हमारे लिए अनुकरणीय है। सबकी तरह वे भी गृहस्थ थे। पारिवारिक जीवन में रहते हुए भी जो उन्होंने आत्म-तत्त्व की विशद व्याख्या की है, उसका कारण यही था कि वे एकांत-चिंतन और आत्मशोधन के लिए भी पर्याप्त समय निकालते थे। वह उत्तर जो हमें भी आंतरिक शांति दे सकता है, उसे बाह्य वस्तुओं में पाया जाना असंभव है। आत्मजगत, परमात्मा और स्वर्ग को अधिक समीप से देखने के लिए कोलाहलपूर्ण वातावरण नहीं, एकांत चाहिए, जहाँ मनुष्य निर्विघ्न, तल्लीनतापूर्वक प्रश्न की गहराइयों में डूब जाए और विचारों के उमड़ते हुए समुद्र में से मोती ढूँढ़कर बाहर निकाल लाए। आने वाली रात को सुंदर बनाने वाले तारागणों की, ग्रह-नक्षत्र और उल्काओं की वैज्ञानिक शोध हमारे ऋषियों ने घाटियों, पहाड़ियों की निस्तब्ध निर्जनता में ही की थी।

भावनात्मक विकास के लिए नितांत एकांत भी अच्छा नहीं है। संगति और साहचर्य भी मनुष्य के विचारों को विशाल बनाने के लिए आवश्यक हैं। आत्मतत्त्व की खोज भले ही एकांत में हो सकती हो, किंतु मानवोचित सद्गुणों का परिष्कार तभी संभव है, जब वह समाज में रहकर अपनी भावनाओं को व्यावहारिकता प्रदान करे। प्रेम ईश्वर-निष्ठा के लिए चाहिए। पर प्रेम की सीख एकांत में कैसे हो सकती है, उसके लिए कुछ आधार भी तो चाहिए। स्नेह, उदारता, आत्मीयता, सहिष्णुता, सौमनस्यता आदि का विकास साहचर्य में संभव है। सेवा-सहानुभूति, दान-दया के मंगलदायक सत्कर्म समाज में रहकर ही संभव हैं। अतः साहचर्य और एकांत में एक प्रकार का ताल-मेल होना चाहिए। दोनों के समन्वय से ही सच्ची जीवन-सिद्धि की कल्पना की जा सकती है।

तप और तितिक्षा के औचित्य से जहाँ इनकार नहीं किया जा सकता है, वहाँ यह भी कहना गलत है कि सुख और भोग निरर्थक हैं। दोनों अपने-अपने स्थान पर महत्त्वपूर्ण स्थितियाँ हैं। इन्हें

स्वाभाविक और स्वस्थ साधनों से ही शांत किया जाना चाहिए। बलपूर्वक किसी कार्य में रुचि नहीं पैदा की जा सकती। भोग की इच्छा चल रही है तो उस समय तप नहीं किया जा सकता। इसी तरह आंतरिक प्रेरणाओं को निरस्त कर भोगवादी दृष्टिकोण रखना भी उचित नहीं।

अवसर का उपभोग मनुष्य के हाथ की बात और उसकी सबसे बड़ी चतुराई है। मनुष्य को नियंत्रण का कार्य करना चाहिए। उसे आत्मा की आवश्यकता के अनुरूप जीवन को गति देनी चाहिए। जीवन निर्माण का अनुभव इतना ठोस नहीं है। अनुभव साथियों, सहचरों की संगति में ही प्राप्त किए जा सकते हैं। परीक्षा के प्रश्नपत्र हल करने के लिए जिस तरह विद्यार्थी एक वर्ष तक पढ़ता है और फिर उसे तीन घंटों में व्यक्त करते हुए अपनी सफलता या असफलता का प्रमाणपत्र प्राप्त करता है, उसी तरह एकांत में आत्मचिंतन और जीवन-शोध के लिए सामाजिक जीवन का अनुभव और अध्ययन जरूरी है। इसी आधार पर आत्मशोध और ईश्वरप्राप्ति की पात्रता प्राप्त कर पाता है।

ऐसी अवस्था, जिसमें साहचर्य भी हो और एकांत साधना के सुअवसर भी, वह केवल वृद्धावस्था ही हो सकती है। वृद्धावस्था एक पुराने जीवन का अंत और नए जीवन की तैयारी की पूर्व संध्या होने के कारण उसका उपयोग और महत्त्व बहुत अधिक है। जो लोग अपनी इस अवस्था का उपभोग जितनी समझदारी से करते हैं, वह उतने ही लाभ में रहते हैं।

पका आम सँभाला न जाए तो वह सड़ जाता है। पके हुए ईंट के भट्ठे को और अधिक आँच से बचाकर ईंटें निकाल न ली जाएँ तो वे खंजड़ हो जाती हैं। किसान पके हुए अन्न की खेती बहुत सँभालकर काटते हैं। ऊटपटाँग फसल काटी जाए तो जितना अन्न झोली में न आए उससे अधिक जमीन में बिखरकर बेकार हो जाए। पके हुए आयुष्य को सँभालना भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। इसलिए दूसरी

अवस्थाओं की अपेक्षा वृद्धावस्था में बहुत समझदारी और चौकसी से जिया जाना चाहिए।

साहचर्य के कारण मोह-ममताएँ इस आयु में बढ़ती हैं। यदि अपना ध्यान आसक्ति में पड़ा रहने दिया जाए तो मनुष्य की बड़ी दुर्दशा होती है। बच्चा भले ही अपना और कितना ही प्यारा क्यों न हो, उसकी उमंगों में और वृद्धावस्था की मोहासक्ति में जबरदस्त विरोध है। यदि दोनों को टकराने का अवसर दिया जाए तो व्यक्ति और कौटुंबिक जीवन नारकीय ही हो जाते हैं।

इस दृष्टि से वृद्धावस्था में गृहस्थी के कर्तव्यों से अपना हाथ समेट ही लेना चाहिए और धीरे-धीरे आत्मकल्याण, ईश्वर आराधना की ओर मोड़ना चाहिए, जिससे भावी जीवन को और स्वस्थ तथा समुन्नत बनाया जा सके। यह अवस्था आकर्षक और सुखद भले ही न हो पर उपयोग की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। उसका बहुत सावधानी और चतुराई से उपयोग करने वाला मनुष्य शरीर में आने का उद्देश्य ही सफल करता है। जो समय रहते वृद्धावस्था की तैयारी नहीं कर लेता अंत में पछताता ही रह जाता है।



बुढ़ापे की तैयारी जवानी में ही करिए!

आज के अर्थ-संकट के समय में निरूपयोगी व्यक्ति क्या परिवार, क्या राष्ट्र और क्या समाज सभी के लिए भारस्वरूप सिद्ध हो सकते हैं। ऐसे निरूपयोगी व्यक्तियों में अपाहिज तथा अपंग तो हो ही सकते हैं, वृद्ध भी इसी गणना में आ सकते हैं। कौन से वृद्ध? जिनकी उपयोगिता शारीरिक तथा बौद्धिक दोनों रूप से खतम हो चुकी हो और वे समाज, परिवार अथवा राष्ट्र किसी के काम के न रहे हों। भारत जैसे अपूर्ण परिस्थितियों वाले देश में जहाँ अक्षत शरीर नौजवान तक समाज व राष्ट्र के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध न हो पा रहे हैं, वहाँ वृद्धों से उपयोगिता की अपेक्षा कहाँ तक की जा सकती है? निस्संदेह वृद्ध भारत के लिए एक समस्या जैसे बन सकते हैं। इस समस्या के और भी गहन हो जाने की संभावना है, क्योंकि सर्वेक्षण के आधार पर डॉक्टरों का मत है कि पिछले कई वर्षों से मनुष्य जीवन में लगभग अठारह-बीस साल की वृद्धि हो गई है।

वृद्धों की समस्या केवल उनकी निरर्थकता ही नहीं है, प्रश्न केवल यह नहीं है कि वृद्धावस्था में लोग बहुधा कमा नहीं पाते। एक बड़ी समस्या है कि उनका अशक्त होकर प्रायः रुग्ण रहना, जिसमें परिवार को उनकी देखभाल, दवा-दारू तथा पौष्टिक आहार का प्रबंध करने में श्रम, समय खर्च करने के अतिरिक्त परिचर्या तथा साज-सँभाल भी करनी पड़ती है। मोटेतौर से यह सारा खर्च एक तरह से जाता बेकार ही है, क्योंकि इससे किसी प्रकार की प्राप्ति की आशा तो होती नहीं। बिना किसी मुजायके के कहा जा सकता है कि यदि वृद्धों पर होने वाला व्यय बच्चों पर लगाया जाता तो वे अधिक स्वस्थ तथा सुयोग्य बन सकते हैं और यदि बचत की जाए तो आगे परिवार का संबल बन सकता है।

इतना ही नहीं, वृद्ध तब और भी समस्या बन जाते हैं, जब वे अपने साथ विविध प्रकार के व्यसन साथ लाकर बुढ़ापे में प्रवेश करते हैं और अनेक प्रकार की विकृतियों से अपने स्वभाव में चिड़चिड़ाहट और असक्तता में ईर्ष्या, द्वेष, वासना, तृष्णा, लिप्सा आदि निर्बलताओं को लपेट लाते हैं। सही बात तो यह है कि इस प्रकार के विकृत बूढ़े ही वास्तविक समस्या बन जाते हैं, नहीं तो वैसे वृद्धजन परिवार, समाज व राष्ट्र के गुरुजन होते हैं। उनके अनुभव बड़ी-बड़ी समस्याएँ सुलझाने में काम आते हैं। उनका शांत रक्त और संतुलित मस्तिष्क संसार की नौजवान गरमी को बहुत कुछ समझाए-बुझाए रहता है। उनके अनुत्तेजित नियंत्रण में संसार के जवान बहुत कुछ सधे रहते हैं, नहीं तो आगा-पीछा न सोचने वाली नौजवानी की आग संसार को जल्दी जला डाले! इस प्रकार वृद्ध जन समाज के रक्षक भी हैं। उनके रहने से परिवार, समाज और राष्ट्र का वजन बढ़ता है तथा उनका होना आवश्यक भी है।

संसार के अन्य सारे देशों से अधिक वृद्धों का आदर भारत में होता रहा है, इस समय भी वही मान्यता है और शायद भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के आधार पर यह मान्यता आगे भी बनी रहेगी, किंतु जबकि वृद्धजन अपनी ओर से इस महान मान्यता को हिलने न दें।

गुरु-आदर की मान्यता बनाए रहने के लिए वृद्धों का कर्तव्य है कि वे किसी न किसी प्रकार से अपनी उपयोगिता बनाए रहें और जहाँ तक संभव हो परिवार पर बोझ न बनें। वे वृद्धावस्था में भी कोई न कोई ऐसा काम करते रह सकते हैं जो उनके करने योग्य हो। उन्हें इस भावना से निष्क्रिय नहीं रहना चाहिए कि वे परिवार के गुरुजन हैं। उन्होंने लड़कों को पाला-पोषा है, पढ़ाया-लिखाया और किसी योग्य बनाया है। इसलिए बेटे-पोतों से बैठे-बैठे सेवा लेना उनका अधिकार है। यह ठीक है कि हमारे गुरुजन उस अधिकार के सर्वथा अधिकारी हैं। उनकी यथासाध्य सेवा होनी ही चाहिए। फिर भी यदि अपने इस अधिकार को यथासंभव अनुपयुक्त ही रहने दें तो उनकी गुरु की गरिमा कई गुना बढ़ जाए और वे सेवा ही नहीं अधिकाधिक श्रद्धा व पूजा के

पात्र बनकर न जाने कितना सम्मानित जीवनयापन करें? उनकी प्रजा उन्हें हाथोहाथ लिए रहे और सेवा-शुश्रूषा के साथ रहकर कुछ न करने और आराम से बैठने के लिए प्रार्थना करती रहे। कदाचित् अपने नैतिक अधिकार के उपयोग की अपेक्षा उनका सक्रिय रहना उन्हें अधिक सुखी बना सकता है। इसलिए ही मनीषी व्यक्तियों ने अधिकार से अधिक त्याग करने की भावना को महत्त्व दिया है।

फिर निष्क्रिय रहने से शरीर में शिथिलता, बुद्धि में आलस्य आता है। जिससे मनुष्य-परिवार पर क्या, स्वयं अपने पर भारस्वरूप बन जाता है। संतानों के बहुत कुछ समर्थ एवं संपन्न होने पर भी यथासंभव यदि उनके आभार से बचा रहा जा सके तो शायद जीवन का वह अंतिम चरण जवानी की कर्मठता से भी अधिक मेहनती तथा माननीय हो। जो वृद्धजन इस गौरव को ले सकें, वे अवश्य लें। उन्हें बेटे-पोतों की कमाई खाने और सेवा लेने की सौभाग्यपूर्ण भावुकता से बचने का ही प्रयत्न करना चाहिए।

अब यदि किन्हीं वृद्धजनों की स्थिति सक्रिय जीवनयापन करने की न भी हो तो वे कम से कम अपनी आवश्यकताओं को वैसे ही काटकर गिरा दें जिस प्रकार माली पौधों की बेकार बढ़ी हुई शाखाओं को काट देता है। जवानी के व्यसनों और विकारों को तो शपथपूर्वक त्याग ही देना चाहिए। वासना, तृष्णा, लिप्सा और लोलुपता को तिलांजलि देकर अपने को अधिक से अधिक लघु तथा सरल बना लेना चाहिए। ऐसा करने से उनका चित्त स्वयं ही शांत, प्रसन्न तथा बंधनरहित रहेगा। बुद्धि निर्विकार होगी और आत्मा में बल का संचार होगा जो परलोक चिंतन की दिशा में बड़ा ही उपयोगी सिद्ध होगा। जवानी की विकृतियों को वृद्धता में बनाए रहने वाले वृद्धों को बड़े कष्ट का सामना करना पड़ता है। संतान से एक बार भोजन-वस्त्र का तकाजा किया जा सकता है, किंतु अनावश्यक व्यसन-वासनाओं का नहीं। व्यसनी व्यक्ति को भोजन-वस्त्र का अभाव उतना नहीं सताता जितना कि व्यसनों की अपूर्ति। व्यसनी वृद्धजनों का जीवन बड़ा ही दयनीय तथा अनादरपूर्ण बन जाता है। व्यसनों को साथ लगाए रहने से

उनसे उत्पन्न होने वाले रोगों से भी पीछा नहीं छूटता। ऐसी दशा में पर निर्भरता के साथ व्यसनों की मार से त्रस्त बुढ़ापे की आवश्यकता का क्या हाल होगा, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

बुढ़ापे का शेष जीवन शांतिपूर्ण आत्मचिंतन तथा भगवान के भजन करने के लिए होता है, धक्के खाने के लिए नहीं। यही वह मूल्यवान समय होता है, जब मनुष्य अपने परलोक-प्रासाद की नींव रखता है। किंतु तभी जबकि मनुष्य पहले से ही इसकी तैयारी करके अंतिम चरण में प्रवेश करे, जवानी में अथक परिश्रम करके अपने कर्तव्यों को पूरी तरह से पूरा करे। संतानों को इस योग्य बनाए कि वे उसका दायित्व ठीक से सँभाल सकें। अपने लिए भी स्थायी परिस्थितियों का निर्माण करें जो आगे चलकर उसकी सच्ची सहयोगी बन सकें। संयम-नियम तथा कठोर व्रत पालन द्वारा इतनी शक्ति, इतना तप तेज संचय करें जो अंतिम क्षण तक उसे अशांत न होने दें। बुढ़ापा जीवन की अनिवार्य शर्त है, एक दिन सबको ही बूढ़ा होना है। जीवन का वह समय ऐसा होता है, जिसमें संचय का अवसर नहीं होता, केवल व्यय ही करना होता है। इस व्यय के लिए आवश्यक संचय जवानी में ही किया जा सकता है। जवानी को अस्त-व्यस्त बिता डालने वालों को वृद्धावस्था में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। जवानी के ज्वार में बुढ़ापे का भाटा न देखने वाले अदूरदर्शी ही होते हैं। जीवन को अपने इस दृष्टिदोष का फल बुढ़ापे में भोगना पड़ता है। जवानी के दिन जिन कष्टों को सहन कर सकते हैं, बुढ़ापा नहीं कर सकता। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह जवानी में अपने को इतना अवश्य कस ले कि आगे चलकर बुढ़ापे का बोझ आसानी से उठा सके।

जिन्हें अपना बुढ़ापा समस्या नहीं बनाना है और ठीक-ठीक गुरुता का आदर वांछित हो तो वह जवानी में ही बुढ़ापे की तैयारी करता हुआ बुढ़ापे में पहुँचे।



बिना तैयारी का बुढ़ापा इस तरह काटकर दिखाइए तो!

अब आप बूढ़े हो गए हैं और जवानी में बुढ़ापे की तैयारी भी नहीं की है। इसलिए स्वाभाविक है कि आप पछताएँ और अपने को कोसें। वही आप कर भी रहे हैं। मगर इस पछताने, कोसने और रोने-झोंकने से होता क्या है। न तो इससे बुढ़ापा चला जाएगा और न उससे बुढ़ापा काटने में मदद मिलेगी। अब तो आपको लाभ, साहसपूर्वक बुढ़ापे से टक्कर लेने से ही मिलेगा।

पहला काम तो यह कीजिए कि बुढ़ापे की इस अवस्था में जवानी के गुलछर्रे याद कर-कर के कुढ़ना छोड़िए। क्योंकि ऐसा करने से आपको उन दिनों की अनुभूति होती रहेगी और वर्तमान की स्थिति उनके अनुकूल नहीं है, इसलिए आपको और भी अधिक मानसिक कष्ट होगा। हाँ यदि आपने कोई परिवार, समाज अथवा राष्ट्र के लिए उपयोगी काम किया हो तो उसको याद करके अवश्य संतोष कीजिए और भगवान को धन्यवाद देते हुए इच्छा कीजिए कि आप इस स्थिति में भी कोई वैसा काम कर सकें। इस प्रकार के सात्त्विक चिंतन से आपको हर्ष होगा, मन में उमंग आएगी और आत्मा में बल बढ़ेगा। यह चीजें बुढ़ापे की कटुता को अवश्य कम करने में सहायक सिद्ध हो सकती हैं।

आप जवानी में बहुत से काम करने के मनसूबे बाँधते रहे किंतु जवानी के जोश में—‘अभी बहुत जिएँगे’ के वंचक विश्वास ने उन्हें प्रारंभ नहीं करने दिया और यदि प्रारंभ भी किया तो प्रमाद ने आज-कल पर रखते हुए उसे पूरा नहीं करने दिया। किंतु अब न शरीर काम देता है और न मन सहायक हो रहा है—सहायक हो भी कैसे? शरीर को जवानी में थका डाला गया है। मन विकारों के पास रहन कर दिया है। अधूरे काम आपको काँटे की तरह छिद रहे हैं। आप पछताते और

मन ही मन कहते हैं—हाय! मैं कुछ भी तो नहीं कर सका! यह हाय-तौबा बुढ़ापे की धार को और तेज कर रही है। इस हाय-तौबा, ताप और पश्चात्ताप को त्यागिए। जो कुछ थोड़ा-बहुत कर सके हैं उसी पर संतोष कीजिए और आगे के लिए अर्थात् पुनर्जन्म के लिए संस्कारों का मानसिक निर्माण कीजिए। इससे भी अच्छा यह है कि इसी स्थिति के अनुरूप जो कुछ भी कर सकें, करने का प्रयत्न कीजिए। पर जो कुछ नहीं कर सके हैं अथवा जो कर नहीं सकते उनकी चिंता छोड़िए। चिंता बुढ़ापे के हाथ में पैनी छुरी ही समझिए।

आपके लड़के-बच्चे आपकी उपेक्षा कर रहे हैं। आप सोचते हैं कि जिन लड़कों को मैंने गोद में खिलाया, जिनकी परवरिश की, जिन पर जीवन की सारी निधियाँ न्योछावर करके योग्य बनाया, वे हमारे सुख-दुःख की जरा भी परवाह नहीं करते। यह मनोव्यथा है, जो आपको कुढ़ाए, घुटाए डालती है। लेकिन इस कुढ़न से कोई काम न बनेगा। यदि आप बुढ़ापे के इस स्वाभाविक कष्ट से बचना चाहते हैं तो उपेक्षा की सौ गुनी उपेक्षा कीजिए। उपेक्षा की उपेक्षा करने का एक ही उपाय है। किसी से किसी बात की अपेक्षा मत कीजिए। पहली गलती तो यही हुई कि आपने संतान का पालन अपेक्षा रखकर किया, यानी आपने इस सौदे के भाव से बच्चों के साथ कुछ किया कि आगे चलकर यह उसका प्रतिफल मय सूद-ब्याज के भर देंगे और इसीलिए आपने अपनी पाई-पाई इस व्यवहार-व्यवसाय में लगा दी। पर अब आपको कुछ न मिलने पर कष्ट हो रहा है। 'नेकी कर कुँ मैं डाल' के भाव से अपने कर्तव्य, उपकार को न भूलिए। आशा, अपेक्षा से पिंड पाक करिए। नैतिकता की परिधि में कोई ऐसी अदालत नहीं है जो आपके उपकार का ब्याज भी आपको दिला सके।

इसलिए जिस विषय में कोई वश न हो उसे रोष, क्षोभ अथवा उपलक्ष्य का प्रसंग बना लेना अपने विचार बाग में काँट लगा लेना है। बच्चे जो कुछ देखभाल कर लेते हैं या जो कुछ दे देते हैं उसी पर प्रसन्नतापूर्वक बने रहोगे तो आपके उपकार की याद करके अपने

कर्तव्य से सर्वथा विमुख रहने पर उन्हें समझ आएगी और आपकी देखभाल करेंगे, क्योंकि उन्हें मालूम है कि वे भी बूढ़े होंगे और तब उनका उदाहरण उनके काम आएगा, ऐसा हो सकता है। किंतु आप अपनी ओर से न तो कोई आशा करें और न अपेक्षा। धैर्य, संतोष, तटस्थता तथा निरपेक्षता बुढ़ापे के बहुत बड़े सहायक हैं। इन्हें अपनाएँ और हर्षपूर्वक आगे बढ़ते जाइए। शिकायत करने से कोई काम बनेगा नहीं।

जवानी के भयंकर विष, व्यसनों को तो ऐसे विदा कर दीजिए जैसे सर्प अपनी केंचुली छोड़कर बिलकुल हलका-फुलका अनुभव करता है। जिस प्रकार आपने उन्हें जवानी में बिना कुछ सोचे-समझे तत्परता से लगा लिया था, उसी प्रकार उत्साहपूर्वक उन्हें छोड़ भी दीजिए। यदि अब भी आप व्यसनी बने हुए हैं तो घुल-घुलकर मरेंगे, सो तो मरेंगे, पर समाज में अश्रद्धा के पात्र भी बनेंगे। जवानी में तो आप कमाते थे इसलिए व्यसनों का बोझ हानियों के साथ उठाते रहे, किंतु अब उसके लिए पैसा कहाँ से आएगा? क्या बच्चों का शोषण करेंगे? न तो आप इसके अधिकारी हैं और न आपको ऐसा करने दिया जाएगा। अपने व्यसनजन्य कष्ट की शिकायत यदि आप बच्चों के सिर थोपते हैं तो अन्याय करते हैं, जिसके लिए यदि आपकी और दूसरी सुविधाएँ भी छीन ली जाएँ तो भी अनुचित न कहा जाएगा। जिन व्यसनों ने आपको आज के लिए कुछ बचाने नहीं दिया, अब भी पराश्रित होकर उनकी उपासना करते रहना पाप ही है।

इसलिए बुढ़ापे का आदर और बच्चों की सद्भावना के लिए व्यसन छोड़ देने की कृपा तो करनी चाहिए। व्यसनों का बोझ हट जाने से आप काफी हलके हो जाएँगे, जिससे बच्चों पर तो बोझ नहीं बनेंगे खुद भी अपने लिए भारस्वरूप न हो सकोगे।

बूढ़ों की बुरी आदत, जवानों की आलोचना करने को यदि आप छोड़ सकें तो समझिए कि बहुत से नौजवानों के दोस्त बन गए। इन सब सुधारों के साथ यदि आप अपने में कुछ गुणों का समावेश भी कर

लें तो आपका बुढ़ापा सफल ही हो जाए। जैसे—अध्ययनशीलता, भगवत भजन और प्रकृति से प्यार! अध्ययन आपके अनुभव के साथ मिलकर मूल्य बढ़ा देगा, भगवत भजन से मिलकर बुढ़ापा संतत्व में बदल जाता है, इसमें संदेह करना ही नहीं चाहिए। इस प्रकार जब आप संतत्वशोभी वृद्ध बन जाएँगे, तब आपको न तो किसी चीज की आवश्यकता होगी और न किसी चीज का अभाव। आवश्यकता रहित अनाभाव कितना सुखकर होता है—इसका पता तो अनुभव करने पर ही चलता है, जिसका अनुभव बुढ़ापे की आयु में कर लेना कोई कठिन बात नहीं है। प्राकृतिक दृश्यों के प्रति अनुराग और उसकी उपासना न केवल स्वास्थ्यदायक ही होगी बल्कि न जाने कितने पुराने विकारों का परिमार्जन करके दिनोदिन निर्मल बनाती जाएगी। यदि कहीं बुढ़ापे की सफेदी के साथ निर्मलता का भी समावेश हो गया, तब तो बुढ़ापे की कष्टकर आयु देवत्व में ही बदल जाएगी। इस प्रकार हम-आप जो बूढ़े हो गए हैं, यदि अपनी वयोवृद्धता को बिना किसी पर बोझ बनाए सम्मानपूर्वक यापन करना चाहते हैं तो इन उपायों का उपयोग करके देखें। जवानी में न की हुई तैयारी को, भूल को कदाचित् यह उपाय पूरा कर सके।



बुढ़ापे से टक्कर लेने के उपाय

व्यक्तिगत, कौटुंबिक और आर्थिक कठिनाइयों की तरह वृद्धावस्था में मौत का भय भी सताने लगता है। किसी-किसी को तो यह भय इतना सताया करता है कि वह अकाल में ही उसके हवाले हो जाता है। मृत्यु का मुकाबला तो अवश्य नहीं किया जा सकता, पर यदि तैयारी कर ली जाए तो बुढ़ापे से जरूर टक्कर ली जा सकती है। किंतु यह तैयारी बुढ़ापे के आक्रमण से पूर्व ही कर लेनी चाहिए, नहीं तो उसी प्रकार हार हो सकती है जिस प्रकार असावधान तथा असन्नद्ध राष्ट्र आकस्मिक आक्रमण से परास्त हो जाता है।

किसी आकस्मिक आक्रमण अथवा अनजान आपत्ति में अदूरदर्शिता की भूल हो सकती है, असावधानी की गलती हो सकती है, किंतु बुढ़ापे का आक्रमण तो निश्चित है। यह एक न एक दिन होगा ही। तब उसका मुकाबला करने की तैयारी में असावधानी रखना अदूरदर्शिता नहीं मूर्खता होगी। इसलिए किसी भी गफलत अथवा भ्रम में रहे बिना बुढ़ापे से टक्कर ले सकने की तैयारी अवश्य कर लेनी चाहिए। जो बुढ़ापे का मुकाबला करने का सबसे बड़ा संबल संतान को ही मानते हैं। ऐसा मानना कुछ गलत भी नहीं है। बात दरअसल यही है कि संतान पिता का नवीन संस्करण होती है। माता-पिता को अधिकार है कि उसके नए प्रतिरूप अपने बच्चे से बुढ़ापे में उसकी सेवा प्राप्त करें, क्योंकि माता-पिता का सर्वस्व धीरे-धीरे बच्चों में ही समाहित हो जाता है और आगे चलकर वे बेचारे खोखले होकर आश्रय के पात्र बन जाते हैं।

अन्य संस्कृतियों के विषय में तो ठीक से नहीं कहा जा सकता, किंतु भारतीय संस्कृति में माता-पिता की सेवा करना पुत्र का परम धर्म रहा है और पूर्वकाल की तो शत-प्रतिशत संतानों ने अपने इस धर्म का निष्ठा के साथ पालन किया है और आज भी ऐसे न जाने कितने भाग्यवान सुपुत्र होंगे, जिनके माता-पिता मौजूद होंगे और वे उनकी सेवा का पुण्य-लाभ कर रहे होंगे। लेकिन आमतौर पर आज की

सामाजिक दशा, समय का परिवर्तन और परिस्थितियों के प्रभाव को देखने से यही पता चलता है कि भारतीय संस्कृति की वह मान्यता अब बहुत कुछ नष्ट होती जा रही है और उसका पालन अपवाद भर बनता जा रहा है। अब इसको मानस परिवर्तन, परप्रभाव, अभाव अथवा समय का फेर कुछ भी क्यों न कह लिया जाए, इससे कुछ बनता नहीं—मूल बात यह है कि आज प्रायः घर-घर बूढ़ों की दशा बड़ी ही दयनीय है। वे बेचारे बेकार की चीज माने जाकर उपेक्षा के शिकार बनते जा रहे हैं। आज के बदले युग में बुढ़ापे के कष्टों से बचने का उपाय सोचना ही होगा, क्योंकि इससे शायद वर्तमान बूढ़ों को कुछ राहत मिले और आगामी वृद्धों को पथ-प्रकाश। इसका उपाय सोचने में जड़ की बात यह है कि बुढ़ापे के कष्टों से कम दुखी होने के लिए जो तैयारी करनी होगी, वह सब करनी खुद ही होगी। इसमें किसी दूसरे की सहायता की अपेक्षा रखना फिर वही गलती होगी, जिसके कारण बुढ़ापा एक प्राणलेवा शत्रु बन जाता है।

तैयारी की बातों पर विचार करते हुए सबसे पहले यह बात समझ में आती है कि पति-पत्नी को दूध-शक्कर की तरह घुल-मिलकर एक रूप हो जाना चाहिए और दोनों को एकमत रहकर बुढ़ापे से मुकाबला करने की तैयारी करते रहना चाहिए। एक जगह जब दो दिल मिलकर, वह भी कौन से दो ? जो एक-दूसरे के पूरक हैं और एक नाव के सवार हैं—तैयारी करेंगे तो तैयारी ठीक होगी। एकरूप पति-पत्नी जब निराश्रित होकर यदि संयोगवश बुढ़ापे के बीहड़ में पहुँच भी गए तो एक-दूसरे के सहारे काफी साहस और सांत्वना पा सकेंगे।

एकमत रहने से पति-पत्नी बच्चों को समान रूप से लाड़-दुलार करेंगे, समान रूप से अनुशासन करेंगे, जिसके परिणामस्वरूप उनके समान श्रद्धाभाजन बनेंगे। ऐसी दशा में माता-पिता का मतैक्य तथा अपने प्रति समान व्यवहार देखकर बच्चे न तो अधिक ढीठ हो पाएँगे और न किसी के पक्षपाती। बच्चों की यह मनःस्थिति उन्हें बहुत कुछ बुढ़ापे का संबल बनाने में सहायक हो सकती है।

बच्चों को पढ़ाइए-लिखाइए, खिलाइए-पिलाइए, पहनाइए-उढ़ाइए, प्यार-दुलार सब कुछ करिए, फिर भी बुढ़ापे में उनसे सहयोग की आशा बिलकुल भी न रखिए। इसके लिए आप अपने हाथ-पैर मजबूत रखिए और बुढ़ापे से टक्कर लेने के लिए अपनी गाँठ को भी पोढ़ी रखिए। मतलब यह है कि बच्चों पर बहुत कुछ खर्च करते हुए भी कुछ बचाते रहना चाहिए। आज के युग में आपकी गाँठ का पैसा बच्चे से कहीं ज्यादा सच्चा सहायक सिद्ध होगा।

अधिक संतान करना भी बुढ़ापे के लिए परेशानी पैदा करना है। एक तो ज्यादा बच्चे होने पर घर में हर समय परेशानी रहती है। उनका ठीक-ठीक पालन-पोषण नहीं हो पाता, तब ऊँची शिक्षा-दीक्षा की बात सोच सकना ही मुश्किल होगा। जब शिक्षित बच्चे आज के जमाने में ज्यादा सहायक सिद्ध नहीं होते, तब कम पढ़े या न पढ़े-लिखे बच्चे क्या पार लगा सकते हैं? कम योग्यता के कारण जब वे खुद कम कमाएँगे, तब यदि वे चाहें भी तो अपने बेकार बड़े-बूढ़ों के लिए कुछ न कर सकेंगे। साथ ही अधिक बच्चे होने से बचत तो असंभव हो ही जाएगी, पत्नी के स्वभाव की मधुरता और स्वास्थ्य समाप्त हो जाएगा, साथ ही बुढ़ापे तक कोई न कोई नाबालिग बच्चा एक बड़ी मुसीबत की तरह साथ लगा रहेगा, जिससे बुढ़ापे में आवश्यक निश्चितता के अभाव में जो दुर्दशा होनी चाहिए वह होगी ही।

बच्चों की शादी तब करिए जब वे पूरी तरह खाने, कमाने और सँभालने लायक हो जाएँ। नहीं तो पुत्र-वधू से घर-आँगन की शोभा बढ़ाने की जल्दी में पुत्र के साथ पुत्र-वधू के खर्च की भी जिम्मेदारी आप पर आ जाएगी। तब तो आप इस गैरत के मारे और भी न बचा पाएँगे कि पराये घर की लड़की को ऐसा कोई कष्ट न हो कि संबंधी लोगों को कोई उलाहना देने का अवसर मिले। यह होगा सो तो होगा ही, लड़के निकम्मे हो जाएँगे। कमाने से पहले शादी उन्हें कामचोर, आलसी और विलासी बना देगी। इससे बेटा माँ-बाप के लिए तो समस्या बनेगा ही, खुद अपने लिए भी मुसीबत बन जाएगा और तब

वह आपके बुढ़ापे के लिए संबल बन सकेगा—ऐसी आशा करना मरुमरीचिका से कम सिद्ध न होगी।

यह तो रही बाल-बच्चों और उनके जीवन के नियंत्रण की बात। अब अपनी बात पर आइए। आप दोनों अर्थात् पति-पत्नी ने यौवन की हवा में जीवन को बहार का स्थान दिया नहीं कि आप बहने लगेंगे और जवानी के उस अंधे बहाव में वह सब कुछ बहा देंगे जिसकी बुढ़ापे में निहायत जरूरत होगी। जवानी की बहार मनाने में पैसा, स्वास्थ्य तथा स्वभाव सब कुछ चला जाएगा। खाने-पीने और मौज करने में लगे रहने से आप वृद्धता के आक्रमण का मुकाबला करने की तैयारी न कर पाएँगे। यह बात सही है कि जवानी में बुढ़ापा न आ सकने वाली दूरी पर जरूर दीखता है, लेकिन सही यह भी है कि जवानी के दिन तेजी से गुजरते हैं और तब तो उनमें बड़े-बड़े पंख लग जाते हैं जब जवानी को जल्दी-जल्दी सुखों का उपभोग करने लगा दिया जाता है। जीवन बहार नहीं है; वह एक कर्तव्य है जिसे सोच-समझकर और आगा-पीछा देखभाल कर निभाया जाता है। जिंदगी की बहार इसी में है कि वह एकसर चलती हुई कहीं पर हार न माने। चार दिन की जवानी की बहार यदि एक लंबे बुढ़ापे का पतझड़ बनकर तपती, तरसती और तड़पती हुई संसार से विदा हुई तो क्या मजा रहा। इसलिए आवश्यक है कि जवानी की समर्थ आयु में ही अपने स्वास्थ्य, स्वभाव तथा स्वाद के यथेष्ट संयम का अभ्यास कर लिया जाए, जिससे वह संचित संपत्ति बुढ़ापे का सच्चा सामर्थ्य तथा स्थायी संबल बन सके!

कम से कम आवश्यकताएँ, न्यूनतम इच्छाएँ, तृष्णाएँ, आशाएँ और चिंताएँ लेकर जो बुद्धिमान तन, मन और धन के साथ बुढ़ापे के मोर्चे पर पहुँचता है, उसे कोई सहायता दे या न दे, वह अवश्य जीतता है, निश्चित रूप से विजयी होता है।



कुछ धन वृद्धावस्था के लिए भी बचाइए

नासमझी से जी गई जिंदगी की शाम—वृद्धावस्था, उस छोटे बच्चे की तरह होती है जिसे बार-बार गलती, असावधानी और उतावली के लिए झिड़क और कठोर शब्द सुनने पड़ते हैं। कई बार तो उस पर मार भी पड़ जाती है। वृद्धों के लिए छोटा सा अपमान और अनादर ही किसी शारीरिक दंड से कम नहीं होता। इधर यदि उन्हें झूठा अभिमान और दंभ का द्वेष आ गया, तब तो वे अपने परिवार की भी दुर्गति करते हैं।

बच्चों की शादियों में भारी खर्च, मुकदमे कचहरियों में अपव्यय, बहू और नातियों के लिए जेवर आदि बनवाकर वे बच्चों का स्नेह जीतना चाहते हैं, पर उसके परिणाम उलटे ही होते हैं। उससे दूसरों का भी अनुचित मार्गदर्शन होता है।

जो अपनी दोनों भुजाओं का पसीना एक करके कमाता है, वही पैसे की कीमत जान सकता है। दूसरे उस कठिनाई को किस प्रकार अनुभव कर सकते हैं? इसलिए हर गृहस्थ को अपनी गृहस्थी की गाड़ी ठीक तरह से चलाने के लिए अपनी गाढ़ी कमाई को खूब सोच-समझकर खर्च करना चाहिए। दूसरों के दबाव अथवा कहने-सुनने में आकर अपने उस पैसे का अपव्यय नहीं करना चाहिए जिसको उसने लाख मुसीबत उठाकर कमाया है।

हर मनुष्य के सामने एक दिन ऐसा आता है जब उसका पौरुष एवं पुरुषार्थ थक जाता है और कमाने योग्य नहीं रहता। बहुत कम ही भाग्यवान ऐसे होते हैं जो जीवन के अंतिम क्षण तक कमाने योग्य बने रहें अथवा कमाते रहें। नहीं तो जवानी की आयु में जीविका के लिए कठिन श्रम करने और हजार तरह के झंझट झेलते रहने से हर साधारण व्यक्ति का पौरुष आयु के अंतिम चरण में थक जाता है और वही आयु

ऐसी होती है जिसमें सबसे अधिक सुविधा, सबसे अधिक आराम और सबसे अधिक निश्चितता की आवश्यकता रहती है।

बचपन तो अभिभावकों के सिर बीत जाता है। जवानी में कष्ट एवं संकट झेलने की शक्ति रहती है किंतु वृद्धावस्था में यह सहन शक्ति शिथिल हो जाती है। जिसके कारण जरा-जरा सी तकलीफ पहाड़ जैसा दुःख देती है। उस समय अपने में पौरुष न रहने से अपनी दुःख, तकलीफ दूर करने की स्थिति भी नहीं रहती। किसी प्रकार की आशा अथवा संभावना न रहने में भविष्य घोर अशांतिपूर्ण ही दीखता है। ऐसी दशा में जो वृद्धावस्था शांतिपूर्वक भगवत भजन में बिताई जाकर अपना परलोक सुधारने को होती है, वह रोते-कलपते, अशांतिपूर्ण वातावरण में कटती है। जिससे आयु का अंतिम चरण तो कंटकाकीर्ण हो ही जाता है, परलोक की भी साधना नहीं हो पाती।

ऐसी पौरुषहीन वृद्धावस्था में मनुष्य का बचाया हुआ पैसा ही काम आता है। जिसके पास चार पैसे होते हैं उसकी सभी जी-हजूरी में लगे रहते हैं। जो उस अवस्था में किसी पर निर्भर नहीं रहता उसका कोई अनादर नहीं कर सकता। जो व्यक्ति जवानी में भावुकतावश अपनी सारी कमाई फूँककर वृद्धावस्था में छूँछे हो जाते हैं उनकी दशा उस विवश आयु में बहुत ही दयनीय हो जाती है।

साथ ही जवानी में जिनका हाथ बिगड़ा रहता है, वह बुढ़ापे में भी ठीक नहीं हो पाता, इसलिए अपनी अपव्ययी आदत के कारण उन्हें दोहरा कष्ट उठाना पड़ता है। पैसा पास नहीं! कोई देता नहीं है और खर्च करने की हवस सताती है, तब किसी को कितनी असह्य पीड़ा होगी यह अंदाजा लगाना कठिन है। यदि वास्तव में इसका अनुमान लगाना ही है तो मध्यम वर्ग के ऐसे बड़े-बूढ़ों के पास जाकर मालूम किया जा सकता है जो अपनी जवानी में बुढ़ापे की कल्पना किए बिना, अंधाधुंध खर्च करते हुए छूँछ हो गए हैं।

शायद ही किसी परिवार में ऐसा अर्थहीन बड़ा-बूढ़ा मिले जो परिवार में निरर्थक भार न समझा जाता हो। आज के दुर्भाग्यपूर्ण अर्थ-प्रधान युग में पैसे की तुलना में मनुष्य का मूल्य बहुत कम हो गया है। यद्यपि यह बात अच्छी नहीं है तथापि किसी समय की प्रबलता का क्या किया जा सकता है ?

फिर यदि एक बार को यह भी मान लिया जाए कि सभी बच्चे अपने बूढ़ों को देवता की तरह मानते हैं और उन पर पैसा तो क्या प्राण तक न्योछावर करने के लिए हर समय तैयार रहते हैं। तब भी जवानी में अर्थशून्य होकर बुढ़ापे में बाल-बच्चों पर भार बनने की क्या आवश्यकता ? जब हम में से कोई उस शिथिल अवस्था में कमाकर नहीं दे सकता तो उसे यह अधिकार भी न मान लेना चाहिए कि वह परिवार पर भार बनकर कोई अनुचित नहीं करता। भले ही वह किसी बेटे-पोते के लिए भार बनकर त्रासदायक न भी हो, तब भी हर समझदार तथा गैरतमंद आदमी को ऐसी हर संभाव्य परिस्थिति से बचने की कोशिश अपनी ओर से करनी ही चाहिए कि वह अपने लायक एवं सुशील बच्चों पर भी भार न बने। कोई भी आदमी इस स्थिति से बच तभी सकता है कि जब उसने जवानी में अपना हाथ रोककर खरच करने की आदत डाली हो और चौथेपन के लिए कुछ बचाकर रखा हो।

अब इसका यह मतलब कदापि नहीं कि परिवार के आवश्यक खर्चों को रोककर बचत की जाए। परिवार के निर्भर सदस्यों की सुख-सुविधा छीनकर बचाया जाए अथवा बाल-बच्चों की शिक्षा-दीक्षा में कटौती करके बचाया जाए। किसी का ऐसा करना तो आवश्यकता से अधिक जघन्य होगा। परिवार की सुख-सुविधा के लिए हर उचित उपाय करना ही चाहिए। बच्चों की पढ़ाई-लिखाई तथा उनके विकास में खरच होने वाले पैसे में कटौती करना निहायत ही निम्न कोटि की बात होगी।

केवल करना यह है कि ऐसा कोई भी व्यय किसी दबाव, भावुकता, प्रेम, स्नेह अथवा वात्सल्य के वशीभूत होकर न करना चाहिए जिसका कोई उपयोग न हो। जिसको खर्च करने से किसी न किसी रूप में उसका मुआवजा न मिला हो। फिर वह मुआवजा चाहे बच्चों की योग्यता, स्वास्थ्य अथवा विकास के रूप में हो, चाहे अपने अथवा अन्य परिजनों के लिए आवश्यक सुविधा के रूप में हो। यही आवश्यक नहीं कि किसी का खर्च किया हुआ पैसा आर्थिक लाभ के रूप में उसके पास ही लौटे। यदि खर्च किए गए पैसे का लाभ किसी दूसरे को भी समुचित रूप से होता है, तब भी उस पैसे का व्यय सार्थक ही माना जाएगा। ऐसे उपयोगी व्यय को कदापि भी अनुचित नहीं कहा जाएगा।

अपव्यय तो वास्तव में उस खर्च को कहना होगा जिसका किसी भी व्यक्ति को किसी भी रूप में लाभ न पहुँचे और यों ही बेकार की बातों में पैसा चला जाए।

यदि ईमानदारी से विवेकपूर्ण आँखों से देखा और विचार किया जाए तो पता चलेगा कि मनुष्य अपने जीवन में जितना खर्च करता है उसका अधिकांश भाग वह बेकार की बातों में लापरवाही के कारण खर्च किया करता है। मनुष्य की अनिवार्य आवश्यकताएँ इतनी अधिक नहीं होती जितनी कि उसकी बेकार की पैदा की हुई जरूरतें। यदि मनुष्य खाने-कमाने पर पचास रुपया खर्च करता है तो इससे अधिक पैसा वह ऐसी बातों पर खर्च कर देता है जिनकी जीवन के लिए कोई आवश्यकता नहीं होती। ऐसी निरर्थक आवश्यकताओं में मनोरंजन, दिखावा, शान-शौकत और रोब-दाब के कार्यों के साथ पचास तरह के व्यसन तथा हजार तरह की बुरी आदतें आ सकती हैं।

मनुष्य को चाहिए कि वह अपने हर आवश्यक खर्च को खुशी-खुशी करे, किंतु अनावश्यक खर्च के समय उसे पत्थर की तरह कठोर हो जाना चाहिए। इस नीति पर चलने वाला बुद्धिमान जीवन के किसी भी भाग में कभी भी कोई दुःख-तकलीफ नहीं उठाता। दुःख-तकलीफ होती तो पैसे वालों को भी है, किंतु अधिकतर कारण अर्थ में ही सन्निहित रहा करता है। निर्धन पैसे के अभाव में दुःख पाता है, वहाँ धनवान पैसे की गरमी में अपने लिए अशांति एवं असंतोष के बीज बो लेता है।

आज के अपने समाज में विवाह जैसे साधारण एवं सामान्य कार्यक्रम में दिखावा के नाम पर इतना अधिक खर्च किया जाता है कि दो-एक शादी करने के बाद हर अभिभावक बुढ़ापे में पहुँचते-पहुँचते बिलकुल छूँछ हो जाता है। अस्तु, दिखावे के नाम पर शादियों में होने वाले अपव्यय को पहले रोका जाना चाहिए, क्योंकि वह न केवल व्यक्तिगत अपितु एक सामाजिक विकार बन गया है। एक इस कुरीति अथवा विकार को दूर कर देने मात्र से ही हर आदमी बुढ़ापे की दयनीयता से बहुत कुछ बच सकता है।



श्रम तो अब भी न त्यागिए

वृद्धावस्था आ गई है इसलिए परिश्रम करना बंद कर देना चाहिए, यह मान्यता उचित नहीं है। उपार्जन की दृष्टि से कोई बड़ा बोझीला काम न किया जाए, यह ठीक है, किंतु अपनी रचनात्मक प्रवृत्तियों को हताश नहीं होने देना चाहिए।

बुद्धिजीवी वर्ग के लिए तो यह सबसे अच्छा समय होता है। अब तक विचार पक गए होते हैं। दुनिया से टक्कर लेते-लेते अनुभवों की कई फाइलें बन गई होती हैं। उस समय समाजसेवा बढ़िया विचार से की जा सकती है जो चढ़ती आयु वालों के लिए कभी भी संभव न रही हो। आवश्यकता इस बात की है कि अपना श्रमशीलता का स्वभाव नष्ट न होने पाए।

श्रमशीलता ऐसा गुण है जो जब भी उदय हो जाए तभी उन्नति का मार्ग खोल देता है। संसार में अनेक व्यक्ति ऐसे हुए हैं जिन्होंने महत्त्वपूर्ण काम वृद्धावस्था में आरंभ किए और वैसी सफलता प्राप्त की जैसी शारीरिक शक्ति से सुसंपन्न युवक भी नहीं कर पाते। बूढ़ा शरीर होता है मन नहीं, जिसका मन जवान है—उद्योगी, आशावान एवं प्रयत्नशील है। वह आयु की दृष्टि से बूढ़ा होने पर भी जवान ही माना जाएगा। बूढ़ा वह है जिनका मन निराश, आलसी एवं शिथिल हो गया हो, भले ही आयु की दृष्टि से जवान क्यों न हो!

जर्मनी के राष्ट्रनिर्माता प्रिंस बिस्मार्क ८० वर्ष की आयु में भी युवकों के समान काम करते थे। महाकवि लांगफैलो की अच्छी कविताएँ ७० वर्ष की आयु के बाद लिखी गईं। हंबोल्ट ने अपना ग्रंथ 'कासमास' ९० वर्ष की आयु में पूरा किया था। गेलीलियो जब ७० वर्ष के थे, तब उन्होंने 'गति' के नियम की रचना पूरी की। टामरका ने हिब्रू भाषा जब पढ़ना आरंभ किया, तब उनकी आयु ८६ वर्ष की थी। प्लेटो का

दर्शनशास्त्र ८१ वर्ष की आयु में परिमार्जित हुआ। आइजक न्यूटन ने अपना विज्ञान ग्रंथ 'प्रिंसिपियों' ८३ वर्ष की आयु में लिखा था। विलिंगटन ८० वर्ष की आयु में युद्धविद्या में बहुत दिलचस्पी लेते थे और मोर्चाबंदी का निरीक्षण स्वयं करते थे। ग्लैडस्टन ८१ वर्ष की आयु में भी नवयुवकों जैसी स्फूर्ति के साथ काम करते थे। डॉक्टर जॉनसन ने कवियों के जीवन-चरित्र का संग्रह ८० वर्ष की आयु में प्रारंभ किया था।

वैज्ञानिक टामस एलवा एडीसन का ५५वाँ जन्मदिन मनाया गया तो उपस्थित आगंतुकों ने पूछा—“अब आगे आपका क्या कार्यक्रम है?” उसने उत्तर दिया—“७५ वर्ष की आयु तक वैज्ञानिक शोध करूँगा। इसके बाद ब्रिज खेलना सीखूँगा। ८० वर्ष की आयु में बच्चों के साथ मनोरंजन किया करूँगा। ८५ वर्ष की आयु में गोल्फ खेलने का आनंददायक कार्य करूँगा।”

उपस्थित सज्जनों में से किसी ने कहा—“९० साल की आयु में क्या कार्य आरंभ करेंगे?” उसने हँसते हुए कहा—“अभी तीस साल का कार्यक्रम बनाना ही ठीक है। आगे की बात आगे देखेंगे।”

सफलता के लिए देर तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है। आशा की झलक दिखाई न देने पर जिनका उत्साह मंद नहीं होता और अपने कठिन परिश्रम के द्वारा जो निरंतर अपने मार्ग पर बढ़ते रहते हैं उन्हें सफलता मिलती है। धैर्य और साहस की परीक्षा में जो लोग उत्तीर्ण होते हैं उन्हीं के गले में विजय की वैजयंती पहनाई जाती है।

रक्त-संचालन की क्रिया का पता लगाने में डॉक्टर हारवे को निरंतर २५ साल श्रम करना पड़ा। रेलगाड़ी के इंजन को काम चलाऊ

बनाने में स्टीफेंसन को १५ साल तक जुटा रहना पड़ा। जॉर्ज बेनक्राफ्ट को अमेरिका का इतिहास लिखने के लिए आवश्यक सामग्री जुटाने में ३० साल लगे। अँगरेजी भाषा के शब्दकोष को तैयार करने में वेब्सटर लगातार २६ वर्षों तक श्रम करता रहा। इतिहासकार गिबबन ने रोम साम्राज्य का इतिहास लिखने में ३५ साल लगाए। उसने नौ बार नए सिरे से लिखा। कालाइज ने फ्रांस की राज्य क्रांति का इतिहास कई सालों में पूरा किया था। पुस्तक की पांडुलिपियाँ जमीन पर पड़ी रह गईं। नौकरानी ने उसे रद्दी समझकर जला दिया। उसका वर्षों का परिश्रम व्यर्थ चला गया तो भी वह निराश नहीं हुआ। उसने उस ग्रंथ को फिर नए सिरे से आरंभ किया और कुछ ही वर्षों में उसे पुनः लिख डाला।



उत्साह बनाए रखें

वृद्धावस्था में भी व्यक्ति को अपना उत्साह बनाए रखना चाहिए। विभिन्न स्तरों पर व्यक्तिगत एवं सामूहिक प्रयास उसी तरह किए जाने चाहिए जैसे कुछ देशों में किए जाते हैं।

नीदरलैंड के बार्कनगर में सन् १९६८ में एक अनोखी मैराथन दौड़ हुई। इस दौड़ प्रतियोगिता में भाग लेने वाले सभी दौड़ाकों की उम्र ४० से ८० वर्ष के बीच थी। सन् १९६९ में जर्मनी में बेसवर्गारिफ्रेथ में २५ किलोमीटर की दौड़ तथा वर्ष १९७०-७१ में स्कोपूडे (स्वीडन) और कार्लोबी-बेरी (चेकोस्लोवाकिया) में इन प्रतियोगिताओं का आयोजन रखा गया। दौड़ की आखिरी प्रतियोगिता पिछले म्यूनिख ओलंपिक के कुछ दिन पश्चात हुई थी।

दौड़ प्रतियोगिता का यह कार्यक्रम पाँच वर्ष पूर्व वृद्ध दौड़ाकों की माँग पर प्रारंभ हुआ था। पकी उम्र के लोगों की अंतर्राष्ट्रीय संस्था 'द इंटरनेशनल एसोसियेशन ऑफ बैटर लांग डिस्टेंस रनर्स' की स्थापना हुई तथा अभी भी संचालन कार्य वहीं से होता है। इस संस्था के २७ देशों में ६०० से भी अधिक ऐसे सदस्य हैं जो वृद्धावस्था में पदार्पण कर चुके हैं। इनमें से सर्वाधिक आयु वाले महाशय ८९ साल के हैं, जिन्होंने अभी-अभी ५००० मीटर की दौड़ ३९ मिनट में पूरी कर वृद्धावस्था में भी युवकों का सा उत्साह, शक्ति और स्फूर्ति दिखाई।

आश्चर्य की बात यह है कि इन प्रतियोगिताओं में भाग लेने वाले प्रतियोगी कभी खिलाड़ी नहीं रहे हैं। उन्होंने ४० साल के बाद ही दौड़ना प्रारंभ किया। नित्य दौड़ने में दिलचस्पी लेते हुए अपनी गति बढ़ा ली। उम्र को देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि खिलाड़ियों की भी उम्र होती है। उम्र चाहे कितनी भी हो यदि वह दृढ़ संकल्पी है तो उम्र उसके मार्ग की अवरोधक नहीं बन सकती।

सन् १९६८ से एक ४२ किलोमीटर की मैराथन की दौड़ तथा दूसरे साल २५ किलोमीटर की दौड़ का सिलसिला प्रारंभ हुआ। इन

दौड़ों में ७०-८० वर्ष की आयु के दौड़ाकों ने इतना कमाल दिखाया कि नौजवानों को भी उनसे ईर्ष्या होने लगी। इन प्रतियोगियों को हार-जीत की इतनी खुशी या गम नहीं होता जितनी प्रसन्नता इस बात से होती है कि उम्र की बाधा को लाँघकर दौड़ सके हैं।

ये युवा हृदय दौड़ाक प्रशिक्षण भी प्राप्त करते हैं। जिन छह व्यक्तियों ने २५ किलोमीटर की पहली दौड़ में २ घंटे ३४ मिनट लगाए थे वही समय घटकर दो साल बाद २ घंटे ३१ मिनट रह गया।

सन् १९६९ की दौड़ प्रतियोगिता में सबसे बुजुर्ग प्रतियोगी ७७ वर्ष के थे जिन्होंने २५ किलोमीटर की दौड़ को ४ घंटे ३९ मिनट और ५४ सेकंड में पूर्ण की। सन् १९७० में इसी दौड़ को ७१ वर्षीय दौड़ाक ने ३ घंटे ५८ मिनट में पूर्ण कर दिखाया। यहाँ भी हार-जीत की अपेक्षा इसी कारण अधिक प्रसन्न होते थे कि उन्होंने २५ किलोमीटर की दौड़ को बिना रुके पूर्ण कर ली।

जीतने का प्रश्न जहाँ होता है, पेशेवर खिलाड़ी अपने दीर्घ अनुभव के कारण नौसिखियों को पीछे छोड़ जाते हैं। जापान के प्रसिद्ध ओलंपिक धावक सदानाग ने ३१ वर्ष की आयु में रोम की ओलंपिक प्रतियोगिता में २५ किलोमीटर की दौड़ दो घंटे ३५ मिनट ११ सेकंड में पूरी की। ४१ वर्ष की अवस्था में इन वृद्ध दौड़ाकों के साथ रहे तो यही दूरी २ घंटे २३ मिनट २२ सेकंड में पूर्ण की।

वृद्धों को प्रोत्साहित करने एवं ऐसी प्रतियोगिताएँ रखने में जर्मनी के डॉ. वान आकेन का पूर्ण सहयोग है। उनकी मान्यता है कि प्रतिदिन २० से ३० किलोमीटर दौड़ने में उम्र कोई रुकावट नहीं होती। दौड़ने की गति धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिए। दौड़ने से मोटापा तो भागता ही है रुधिर तंत्र के विकार भी नष्ट हो जाते हैं।

व्यक्ति मन से बूढ़ा हो जाता है शरीर से नहीं। जैसा मन वैसा तन। ५० के पार होते-होते औसत भारतवासी को बेकार व निरुपयोगी समझने लगता है और ६०-७० वर्ष के आगे जीने की आशा भी छोड़ देता है।

हमारे देशवासियों की इस हीन मनोभूमि को बदलना अति आवश्यक है। यहाँ भी ऐसी ही संस्थाओं की आवश्यकता है जो वृद्धों की महत्ता को स्वीकारें तथा उन्हें प्रोत्साहित कर जीने की कला सिखाएँ। इस ओर महत्त्वपूर्ण कदम उठाने चाहिए। इसके लिए सामूहिक प्रयास भी सफल हो सकते हैं।

शरीर साधना को जो महत्त्व दिया जाना चाहिए, दुर्भाग्य से हम उतना नहीं देते। वृद्धों की ही बात नहीं, युवकों में भी व्यायाम और खेलों के प्रति उत्साह नहीं है। यही कारण है कि म्यूनिख ओलंपिक में भारत को केवल एक कांस्य पदक मिला। ग्राम-ग्राम में देवमंदिर की तरह, विद्यामंदिर—व्यायामशाला की स्थापना कराने के अभियान चलाने की आवश्यकता है। इसमें वृद्धों को बढ़-चढ़कर भाग लेना चाहिए।

जापान की जनसंख्या सन् १९७१ में दस करोड़ थी, जिसमें एक करोड़ दस लाख व्यक्ति ऐसे थे, जो साठ से ऊपर हो चुके थे। इन लोगों का स्वास्थ्य तथा जीने की आकांक्षा हमारे देश के वयोवृद्धों से कई गुना बेहतर है। इसका कारण स्वास्थ्य की ओर समुचित ध्यान देना ही है।

८ अक्टूबर, १९७२ को जापान में साठोत्तर लोगों की ओलंपिक खेल प्रतियोगिता हुई जिसमें १००० वृद्ध स्त्री-पुरुषों ने भाग लिया, जिनमें तीस की आयु तो ८० वर्ष से ऊपर थी। सबसे वृद्ध खिलाड़ी ८७ वर्ष का था। एक अमेरिकी ने भी इस प्रतिस्पर्द्धा में भाग लिया था।

इस प्रतियोगिता का नाम 'टर्टलंपिक' था। 'टर्टल' का अभिप्राय कछुए से होता है, जो अपनी मंदगति के साथ-साथ दीर्घायु के लिए भी प्रसिद्ध होता है। वृद्ध लोग अपने स्वास्थ्य के प्रति उपेक्षा न बरतने लगेँ और जीवन से निराश न हो जाएँ, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए 'टोक्यो कोसेई नेन्किन हाल' नामक संस्था इस प्रतियोगिता का आयोजन करती है। इस प्रतियोगिता को राष्ट्रीय महत्त्व मिला हुआ है। यहाँ

दर्शकों का उत्साह देखते ही बनता है। प्रतियोगी भी उनसे किसी कदर पीछे नहीं रहते।

इसमें जापानी खेल तथा अंतर्राष्ट्रीय पद्धति की दौड़ें रखी जाती हैं। ६,०३,५०० मीटर व १०,००० मीटर की दौड़ के अतिरिक्त चम्मच दौड़ व रिले दौड़ भी होती है। ऐसी लंबी दौड़ों के लिए प्रतियोगियों को नियमित रूप से दौड़ का अभ्यास करना होता है। रिले दौड़ का रंग तब और भी अधिक जमता है, जब अपने पितामहों के साथ पौत्र व दौहित्र भी दौड़ने लगते हैं।

प्रतियोगिता में भाग लेने के पहले प्रतियोगियों की शारीरिक जाँच की जाती है। रक्तचाप, श्वास गति व मूत्र परीक्षा के साथ-साथ कद, वजन व सीना भी देखा जाता है। जब उन्हें डॉक्टरी सर्टिफिकेट मिल जाता है तभी प्रतियोगिता में भाग ले सकते हैं।

ये प्रतियोगिताएँ पुरुषों व महिलाओं की पृथक-पृथक स्पर्द्धाएँ होती हैं। इनमें उत्साही स्त्री-पुरुष भाग लेते हैं। प्रतियोगिता में सबसे अधिक उत्साह १०,००० मीटर की मैराथन दौड़ में देखा गया था। इसमें १८० प्रतिस्पर्द्धियों ने भाग लिया। सभी प्रकार की दौड़ों में कुल मिलाकर ८०० प्रतियोगियों ने भाग लिया।

खेल में स्वास्थ्य संवर्द्धन का लक्ष्य तो होता ही है, साथ ही साथ जीवन की सफलताओं, असफलताओं में समभाव रहने के खिलाड़ी भाव का भी उदय होता है। इससे मनुष्य का जीवन के प्रति रस, उत्साह टूटने नहीं पाता। इन वृद्धों में भी इस प्रतियोगिता के दौरान युवकों के से जोश व त्वरा के दर्शन होते थे।

आयु के अनुसार प्रतिस्पर्द्धियों को वर्गों में बाँट दिया गया था। पचहत्तर वर्ष से ऊपर की आयु वाले दौड़कों में प्रथम आए श्री काशिवागी जिन्होंने ५१ मिनट २८ सेकंड में यह दौड़ पूरी की। इसी वर्ग की महिला श्रीमती हतातो ने ६० मिनट ३० सेकंड में यह दौड़ पूरी की।

शरीर को स्वस्थ रखते हुए भौतिक व आध्यात्मिक उपलब्धियों के लिए सतत साधनाशील रहने व जीवन को खिलाड़ी की तरह हार-जीत में समभाव रखते हुए जीने की प्रेरणा पाने के लिए ऐसी प्रतियोगिताएँ बहुत महत्त्व की होती हैं। हमारे देश में ऐसी ही व्यायामशालाओं की स्थापना व प्रतियोगिताओं का आयोजन होना चाहिए।

हमारे देशवासियों की औसत आयु पिछले दिनों बढ़ी अवश्य है, फिर भी वह अन्य देशों के मुकाबले में कम है। उसी अनुपात में दीर्घजीवी भी कम हैं। पचास-साठ तक पहुँचते-पहुँचते आदमी अपने आपको बूढ़ा, थका, फालतू समझने लगता है। वह जीवन से लगभग निराश ही हो जाता है। ऐसे लोगों के लिए यह प्रतियोगिता एक आदर्श उपस्थित करती है। बूढ़े हो जाने का अर्थ जीवन से बेजार हो जाना नहीं है। इस अवस्था में भी श्रम तथा व्यायाम द्वारा कार्यक्षमता तथा आरोग्य बनाए रखना कठिन नहीं।

अथक परिश्रम और अनवरत श्रम की साधना में जो लोग श्रद्धापूर्वक लगे रहे, उन पर सिद्धि की देवी ने प्रसन्न होकर अभीष्ट वरदान प्रदान किए हैं। इसकी सत्यता से संसार के इतिहास का पन्ना-पन्ना भरा पड़ा है। कोई वृद्ध हो या युवक श्रमशीलता सबके लिए समान रूप से उपयोगी सिद्ध होती है।



लोकोत्तर जीवन की तैयारी

वृद्धावस्था का महत्तम उपयोग उसका लोकोत्तर जीवन की तैयारी है। इस अवस्था में सारी परिस्थितियाँ उसके अनुकूल बन जाती हैं। गृहस्थ जीवन की आपा-धापी कम हो जाती है, शरीर शिथिल पड़ जाने से इंद्रियों की उत्तेजना भी समाप्त हो जाती है। जीवन भर के अनुभवों को मिलाकर मनुष्य अपने शाश्वत जीवन संबंधी विशेष प्रश्नों को भी आसानी से समझने लगता है। अब तक मद-मोह, काम-क्रोध की प्रबलता के कारण जो बातें नीरस लगती थीं अब उन्हीं में रस आने लगता है। शरीर अशक्त हो गया और मृत्यु के दूत जरा-जीर्णता, श्रवण शक्ति का हास, आँखों की दृश्यशक्ति का घट जाना आदि जब चारों ओर से घेरा डालने लगते हैं तो मनुष्य को स्वतः ही जीवनलक्ष्य की प्राप्ति की बात अच्छी लगने लगती है।

मनुष्य का यह जीवन सीमाबद्ध है। अधिक से अधिक ६०-७० वर्ष का जीवन ही मनुष्य को मिला है। कोई नियम-संयम से रहे तो शतायु भी हो सकता है। अच्छी सुविधाएँ, प्राकृतिक जीवन, परिश्रमशीलता और आहार-विहार में प्रकृति का अनुसरण किया जा सके तो १५० वर्ष तक भी इस शरीर की गाड़ी को खींचा जा सकता है। बस उसके आगे विराम निश्चित है। जो अदृश्य है उसकी तुलना में यह जीवन उतना ही छोटा है, जितना ब्रह्मांड की तुलना में एक छोटी सी चींटी। इसलिए यदि कोई इस छोटे से जीवन और लौकिक सुखों को ही जीवन का लक्ष्य मानकर पारलौकिक जीवन की चिंता नहीं करता तो उसे निरा बालक और अज्ञानी ही कहा जाएगा। मनुष्य-शरीर और इस जीवन की अनेक सुविधाएँ परमात्मा के वह वरदान हैं, जिनका उपयोग करके मनुष्य अपने शाश्वत लक्ष्य, पूर्ण आनंद की प्राप्ति कर सकता है।

बाल्यावस्था औरों के हाथ गुजर गई, यौवन रँगरेलियों और तृष्णा, संचय, शेखीखोरी में लुट गया, तब वृद्धावस्था आई। इस आयु में न संसार साथ देता है और न शरीर, तब मनुष्य को वह सब सोचते बनता है, वस्तुतः जिसके लिए वह धरती पर मनुष्य का स्वरूप लेकर प्रादुर्भूत हुआ था। यह समझदारी यदि जीवन भर न आई तो वृद्धावस्था में तो आ ही जानी चाहिए।

हमारे यहाँ व्यवस्था पहले ही कर दी गई थी, चार आश्रम प्रथा उसी का रूप थी। पर अब वह मान्यता शिथिल हो गई, उसके फलस्वरूप पार्थिव जीवन बिलकुल अस्त-व्यस्त हो उठा है। लौकिक दृष्टि से निरर्थक और बेकार हो जाने पर भी बुढ़े घर छोड़ना नहीं चाहते, फलस्वरूप हर घर में संघर्ष की स्थिति बन रही है। मनुष्य अपने आप से तो ठगा ही जाता है, वह परिवार और समाज की परिस्थितियों को और भी नारकीय बना डालता है। कदाचित्त कहीं ऐसी स्थिति न भी हो, लोग घरों में वृद्धों का सम्मान करते भी हों तो भी परिवारों से चिपके रहना उनके हित में नहीं है, क्योंकि शाश्वत सिद्धांत कभी बदलते नहीं। मनुष्य इच्छा कहाँ करता है? तो भी मृत्यु तो आती ही है। मनुष्य कब चाहता है कि वह बुढ़ा हो, पर शरीर तो अपनी असमर्थता प्रकट करता ही है। यदि ईश्वरीय नियम नहीं बदल सकते तो उनमें अपने आप को फिट करने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य अपने आप को बदले, शाश्वत स्वरूप को जाने और मोक्ष, परम पद, जीवन मुक्ति का आनंद लूटने के लिए स्वयं को बदले। वृद्धावस्था का उपयोग इस दृष्टि से बड़ा ही अनोखा और अनुकूल होता है।

इस अवस्था को सुविधा की दृष्टि से चार भागों में बाँट लेना चाहिए—दो पारमार्थिक (१) साधना, (२) स्वाध्याय तथा शेष दो शारीरिक—(३) श्रम और (४) लोकसेवा। यह विभाजन उपार्जन की दृष्टि से नहीं, वरन आध्यात्मिक लाभ की दृष्टि से है। मुख्य पहले दो

हैं, शेष दो वह आधार मात्र हैं, जिन पर स्वाध्याय और साधना के स्तंभ टिके रह सकते हैं।

श्रम को इसीलिए नहीं छोड़ देना चाहिए कि उससे शरीर की शिथिलता दूर रहती है। सब अंग अपना-अपना काम करते रहते हैं और व्यक्ति रुग्णता और बीमारी से सुरक्षित बना रहता है, इसलिए हलके-फुलके काम मृत्युपर्यंत करते रहना चाहिए। लोकसेवा का उपयोग अपने पीछे एक स्वस्थ और सुंदर संसार छोड़कर प्रसन्नतापूर्वक जाने के लिए किया जाता है। यह इसलिए भी आवश्यक है कि कहीं दोबारा फिर इसी संसार में लौटना पड़े तो हमें उन नारकीय परिस्थितियों का सामना न करना पड़े जो अब बनी हुई हैं। इसलिए जहाँ लोक-सेवा एक परमार्थ है, वहाँ एक बड़ा भारी स्वार्थ भी है और उसकी उपेक्षा किसी भी मूल्य पर नहीं की जानी चाहिए। वृद्ध पुरुषों को अपनी मानसिक चेष्टाएँ घर और कुटुंब की ओर से खींचकर सारे समाज, देश और दुनिया को अच्छा और व्यवस्थित बनाने में लगाना चाहिए। यह क्रम बंद हो जाता है, तभी उठता हुआ नया रक्त भटक-कर गलत रास्ते पर चला जाता है। आज की सामाजिक दुर्दशा का बहुत कुछ दोष इस पर भी है कि हमारे पुरखों ने आत्मकल्याण को लोकसेवा से अधिक महत्त्व दिया, यह भूल आगे नहीं हो तो ही अच्छा।

इतना होने पर भी हम यह मानते हैं कि मनुष्य को आत्म-कल्याण की आवश्यकता की उपेक्षा नहीं ही करनी चाहिए और उसके लिए नियमित रूप से साधना और स्वाध्याय का क्रम चलाते रहना चाहिए। यह भी एक तरह का परमार्थ ही है। साधना से अंतःकरण के कपाट खुलते हैं, मनुष्य की लौकिक आकांक्षाओं का मूल्य घटता है और उसका एक विशाल क्षेत्र में विकास होने लगता है। साधना मनुष्य को इतना छोटा, अणुमात्र का अनुभव करा देती है कि इस संसार का विराट स्वरूप और उसकी वस्तुस्थिति अपने आप स्पष्ट होने लगती

है। संसार का यथार्थ ज्ञान मनुष्य को हो जाए तो फिर आत्मकल्याण वाली बात बिलकुल आसान हो जाती है।

साधना की प्रगति के लिए स्वाध्याय उतना ही अनिवार्य है, जितना शरीर के लिए आहार। आहार न मिले तो शरीर नष्ट हो जाए, उसी प्रकार पूर्वसंचित ज्ञान का आश्रय और संबल न मिले तो साधना का धरातल नष्ट हो सकता है। इसलिए वृद्धावस्था में मनुष्य का अधिकांश समय स्वाध्याय में लगे। जो कुछ पढ़ा जाए उस पर चिंतन और मनन भी किया जाए और तदनुरूप अपनी इच्छाओं, आवश्यकताओं एवं मनःस्थिति को ढालने का भी साहस किया जाए, इसी का नाम साधना है। इस तरह की चतुर्विध साधना यदि स्वर्ग और मुक्ति नहीं दिला सकती तो उससे अगले जन्म को और बढ़िया तथा व्यवस्थित बनाया जा सकता है। गीता कहती है—

तत्र तं बुद्धि संयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।

सतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥ —गीता ६/४३

“हे अर्जुन! जो पुरुष इस जीवन में साधना करता है और ज्ञान संचय कर लेता है, वह पुनर्जन्म में उन संस्कारों को अनायास ही प्राप्त कर लेता है। यह संस्कार उसे ईश्वरप्राप्ति में सहयोग देते हैं।”

यह मनुष्य शरीर बड़ा दुर्लभ है। बड़े पुण्यों से प्राप्त किया जाता है। यह स्वर्ग की प्राप्ति का साधन है। इसलिए मनुष्य शरीर प्राप्त कर इसे शुभ कर्मों में लगाना चाहिए, ताकि जीवात्मा की अवनति न हो, पथभ्रष्ट न हो। वृद्धावस्था इसी के लिए हमें सचेत करने आती है। जो इस अवसर को हाथ से नहीं जाने देता वही सच्चा बुद्धिमान है।



बुढ़ापा मन का भ्रममात्र है

सामान्यतः देखा जाता है कि व्यक्ति ४०-४५ की आयु के बाद अपने को वृद्ध समझने लगते हैं। कुछ करने की, आगे बढ़ने की उनकी महत्वाकांक्षाएँ बुझ सी जाती हैं। स्वास्थ्य और सामर्थ्य होने पर भी यह मानसिक धारणा कि 'वे वृद्ध हो गए हैं' उनकी शक्तियों को पंगु बना डालती हैं। वस्तुतः देखा जाए तो विश्व के महापुरुषों ने अपने ख्याति प्राप्त कार्य ५०-६० वर्ष की आयु के बाद ही किए हैं क्योंकि वर्षों का संचित अनुभव ही सहायता करता है। यौवन शारीरिक अवस्था मात्र नहीं है, अपितु शक्ति और सामर्थ्य का, आनंद और उल्लास का सृजन शक्ति का दूसरा नाम ही यौवन है। गेलार्ड हाजर का कथन है—“उम्र का संबंध आदमी के शरीर, आत्मा और मन से है। कलेंडर से उसका कोई संबंध नहीं।”

महापुरुषों के जीवन पर यदि हम दृष्टि डालें तो स्पष्ट हो जाएगा कि आयु का बंधन न मानने वाले व्यक्ति तथाकथित वृद्धावस्था में भी महान कार्य करते हैं। महात्मा गांधी ने ६३ वर्ष की आयु में और उसके बाद भी अनेक भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया था। उनका कथन था—“मुझे तो ख्याल भी नहीं आता कि मैं बूढ़ा हो गया हूँ।” जिस आदमी को ऐसा लगता हो, वह क्या पाठशाला के एक विद्यार्थी की तरह उर्दू का अध्ययन करेगा? तमिल, तेलगू और बंगला का अध्ययन करने के सपने देखेगा? और सचमुच ही उन्होंने वृद्धावस्था में भी इन लिपियों तथा भाषाओं का अध्ययन किया। नोबुल पुरस्कार विजेता विश्वकवि रवींद्रनाथ टैगोर ९० वर्ष की आयु तक निरंतर साहित्य-साधना में लगे रहे। परिणामतः वे श्रेष्ठ साहित्यिक कृतियाँ हमें देते रहे और विश्ववन्दनीय बने।

अँगरेजी साहित्य के प्रसिद्ध कवि मिल्टन ने अपनी विश्वप्रसिद्ध कृति 'पैराडाइज लॉस्ट' की रचना ५० वर्ष की आयु में तथा 'पैराडाइज रीगेंड' की ६२ वर्ष की अवस्था में की थी। जर्मन कवि गेटे ने ८० वर्ष की आयु में अपनी महत्त्वपूर्ण कृति 'फास्ट' पूरी की थी। महान

दार्शनिक बैनैदित्तो क्रोचे ८० वर्ष की आयु में भी कठिन श्रम करते थे। वे प्रतिदिन १० घंटे निश्चित रूप से कार्य करते थे। ८५ वर्ष की आयु में भी उनकी २ पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं। प्रसिद्ध चित्रकार टीटान ने ९८ वर्ष की आयु में अपना ऐतिहासिक चित्र 'बैटिल ऑफ लिमांटो' का अंकन किया था।

उद्योग के क्षेत्र में भी ऐसे अनेकों उदाहरण मिलते हैं जबकि वृद्ध समझे जाने वाले व्यक्तियों ने युवकों से भी अधिक कार्यकुशलता तथा शक्ति का परिचय दिया। कौमोडोर बैंडरबिट ने ७० से ८० वर्ष की आयु के मध्य लगभग १० करोड़ रुपये की संपत्ति अर्जित कर युवकों को भी मात दे दी। विश्वप्रसिद्ध उद्योगपति हेनरी फोर्ड ने अपने पिता से जब कंपनी का उत्तरदायित्व लिया तो वे ८२ वर्ष के थे। इस आयु में भी जिस कुशलता से वे कार्य-संचालन करते थे उसे देखकर कर्मचारी भी दंग रह जाते थे।

ब्रिटेन के प्रधानमंत्री श्री विंस्टन चर्चिल ७०-८० साल की आयु के उपरांत भी शक्तिशाली डायनेमो के समान अपना कार्य करते रहे। अपनी क्रियाशीलता, अदम्य उत्साह तथा शक्ति के कारण वे इस आयु में भी 'उज्ज्वल भविष्य वाले युवा' कहे जाते थे।

तरुण बने रहने के लिए यह आवश्यक है कि संतुलित आहार-विहार अपनाएँ। खाद्य-अखाद्य सभी कुछ पेट में भरकर शरीर के कोषाणुओं को शक्तिहीन न करें। शरीर को स्वस्थ रखें, क्योंकि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन निवास करता है। व्यायाम तथा भ्रमण के द्वारा शरीर के प्रत्येक अवयव तथा मांसपेशी को शक्तिशाली बनाएँ। प्रसन्न रहने की आदत डालें तथा खिल-खिलाकर हँसें। साथ ही यह भी आवश्यक है कि सदैव किसी न किसी कार्य में लगे रहें। बेकार बैठने से हमारी शक्ति तथा प्रतिभाओं पर जंग लग जाती है।



वृद्धों के लिए इतना तो समाज भी कर सकता है

समय का चक्र अबाध गति से चलता रहता है। नियति का यही स्वभाव रहा है। आज जो बालक है उसे वह कल युवा, परसों वृद्ध बना देती है।

पचास के ऊपर आयु होने पर मनुष्य के सामने कई ऐसी समस्याएँ आ खड़ी होती हैं, जिनके विषय में उसने व्यस्त और भागते हुए जीवन में दो घड़ी रुककर सोचा ही नहीं।

ये समस्याएँ भारतीय समाज में अभी उग्र रूप से सामने नहीं आई हैं, किंतु वे दिन दूर नहीं जबकि इस आयु में आकर वृद्ध अपने आप को व्यर्थ अनुभव करें तथा उनका जीवन ही निरर्थक हो जाए।

पाश्चात्य देशों, विशेषकर अमेरिका, इंग्लैंड, फ्रांस आदि देशों में अधिकांश वृद्धों की दुनिया सूनी तथा जीवन नीरस हो गया है।

पश्चिमी देशों में अपने पावों पर खड़े होते ही अधिकांश युवक अपने माता-पिता से पृथक हो जाते हैं। संपन्नता तथा सुख-भोग की दौड़ में इतने व्यस्त हो जाते हैं कि उन्हें अपने माता-पिता की ओर ध्यान देने का समय ही नहीं रहता। माता-पिता भी जब तक किसी काम-धंधे में लगे रहते हैं, तब तक तो उपार्जन तथा उपभोग के सामान्य जीवनचक्र में फँसे रहकर भावी जीवन के बारे में नहीं सोचते। पचास के ऊपर होते ही उनका शरीर पहले का सा समर्थ नहीं रहता। नौकरी व रिटायरमेंट मिल जाता है। अतः आर्थिक समस्या उत्पन्न हो जाती है। वे घर बैठ जाते हैं। तन-मन से थके इन वृद्धों को युवक लोग उपेक्षा तथा अनादर की दृष्टि से देखने लगते हैं। ऐसी स्थिति में वे अपने आप के लिए एक समस्या बन जाते हैं।

इन वृद्धों की समस्याओं का समाधान संयुक्त राज्य अमेरिका के केलीफोर्निया नगर निवासी श्री एस. डब्ल्यू. कार्टिस ने खोजा। यह समाधान वर्ल्ड ऑफ लेजर (आराम की दुनिया) है।

यह संस्थान इन वृद्धों के तन को सबल तथा मन को सबल बनाने के साथ-साथ उनकी आर्थिक समस्याओं का समाधान भी करता है।

इस समय इस संस्थान में १२,००० वृद्ध रहते हैं। इनकी आयु बावन वर्ष से अधिक है। यों संस्थान का नाम आराम की दुनिया है, किंतु यहाँ इन लोगों को अधिकाधिक समय तक कार्यरत रखा जाता है।

इन्हें निठल्ले बैठने की न फुरसत है न संस्थान निठल्ले बैठने ही देता है। वृद्धों के उपयुक्त खेल-कूदों की यहाँ व्यवस्था है, जिससे उनका शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य बढ़े।

इनकी कार्यक्षमता तथा अनुभव का स्वयं को तथा समाज को लाभ मिले इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए यहाँ ऐसे कई काम भी कराए जाते हैं, जिनसे इस संस्थान के सदस्यों का खरच चलता है।

समाज से एक दम कटकर रह जाने की विभीषिका से उबरकर यहाँ लोगों के परिचय तथा सद्भावना का काफी विस्तार हो जाता है। बारह हजार व्यक्ति एक साथ रहते हैं तो यह स्वाभाविक होता है कि प्रत्येक के मन में कुटुंब भावना उत्पन्न हो।

हमारे देश में अभी वह स्थिति तो नहीं आई है कि पाश्चात्य देशों की तरह वृद्ध संस्थान खोले जाएँ, किंतु वृद्ध समय को देखते हुए परिवार तथा समाज पर भार बनने की अपेक्षा समाजसेवा के कार्य को हाथ में लेकर अपने को बेकार या निठल्ला होने से बचाएँ तथा पाश्चात्य देशों की सी स्थिति न आने दें। युवक वर्ग को भी अपने इन बुजुर्गों के प्रति आदर व सम्मान का व्यवहार करना चाहिए। हमारे देश में भी बुजुर्गों के प्रति युवा पीढ़ी का दृष्टिकोण बदलने लगा है। वे भी अपने को पाश्चात्य रंग में रँगने लगे हैं। उन्हें पाश्चात्य देशों में चलने वाले इन आंदोलनों से सबक लेना चाहिए।



हमारा युग निर्माण सत्संकल्प

- ✧ हम ईश्वर को सर्वव्यापी, न्यायकारी मानकर उसके अनुशासन को अपने जीवन में उतारेंगे।
- ✧ शरीर को भगवान का मंदिर समझकर आत्मसंयम और नियमितता द्वारा आरोग्य की रक्षा करेंगे।
- ✧ मन को कुविचारों और दुर्भावनाओं से बचाए रखने के लिए स्वाध्याय एवं सत्संग की व्यवस्था रखे रहेंगे।
- ✧ इंद्रिय संयम, अर्थ संयम, समय संयम और विचार संयम का सतत अभ्यास करेंगे।
- ✧ अपने आपको समाज का एक अभिन्न अंग मानेंगे और सबके हित में अपना हित समझेंगे।
- ✧ मर्यादाओं को पालेंगे, वर्जनाओं से बचेंगे, नागरिक कर्तव्यों का पालन करेंगे और समाजनिष्ठ बने रहेंगे।
- ✧ समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी को जीवन का एक अविच्छिन्न अंग मानेंगे।
- ✧ चारों ओर मधुरता, स्वच्छता, सादगी एवं सज्जनता का वातावरण उत्पन्न करेंगे।
- ✧ अनीति से प्राप्त सफलता की अपेक्षा नीति पर चलते हुए असफलता को शिरोधार्य करेंगे।
- ✧ मनुष्य के मूल्यांकन की कसौटी उसकी सफलताओं, योग्यताओं एवं विभूतियों को नहीं, उसके सद्विचारों और सत्कर्मों को मानेंगे।
- ✧ दूसरों के साथ वह व्यवहार नहीं करेंगे, जो हमें अपने लिए पसंद नहीं।
- ✧ नर-नारी के प्रति परस्पर पवित्र दृष्टि रखेंगे।
- ✧ संसार में सत्प्रवृत्तियों के पुण्य प्रसार के लिए अपने समय, प्रभाव, ज्ञान, पुरुषार्थ एवं धन का एक अंश नियमित रूप से लगाते रहेंगे।
- ✧ परंपराओं की तुलना में विवेक को महत्त्व देंगे।
- ✧ सज्जनों को संगठित करने, अनीति से लोहा लेने और नवसृजन की गतिविधियों में पूरी रुचि लेंगे।
- ✧ राष्ट्रीय एकता एवं समता के प्रति निष्ठावान रहेंगे। जाति, लिंग, भाषा, प्रांत, संप्रदाय आदि के कारण परस्पर कोई भेदभाव न बरतेंगे।
- ✧ मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है—इस विश्वास के आधार पर हमारी मान्यता है कि हम उत्कृष्ट बनेंगे और दूसरों को श्रेष्ठ बनाएँगे, तो युग अवश्य बदलेगा।
- ✧ 'हम बदलेंगे-युग बदलेगा', 'हम सुधरेंगे-युग सुधरेगा' इस तथ्य पर हमारा परिपूर्ण विश्वास है।

